JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महाकवि कालिदास के महाकाव्यों में प्रकृतिचित्रण

–प्रणव पाण्डेय (शोधच्छात्र)
संस्कृत विभाग, टी. डी. (पी. जी.) कालेज,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश, पिन कोड– 222002

महाकवि कालिदास ने मनुष्य के अन्तःकरण पर पड़ने वाले प्रकृति के प्रभाव को भली–भाँति आत्मसात् करते हुए, प्रकृति को मानवीय भावनाओं के साथ जोड़कर देखते हुए, बाह्यप्रकृति की सहज सुषमा पर सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है। उन्हें इस तथ्य का बोध अच्छी तरह था कि अनादि काल से प्रकृति से मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मानव–मन की किसी भी भावदशा में महाकवि कालिदास ने प्रकृति को अपने समक्ष उपस्थित पाया है; चाहे वह साम्यमूलक हो, या वैषम्यमूलक। प्रकृति का उल्लास यदि संयोग में आश्रय के आनन्द को द्विगुणित कर देता है, तो विरहविधुर मन को शूलवत् पीड़ित भी करता है। महाकवि ने अपने काव्यों में सर्वत्र यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रकृति के सुखप्रद अथवा दुःखप्रद रूप, संयोग या वियोग के आश्रयभूत मन में जागृत भाव को तीव्रतम करने में सहायक होते हैं। संयोग की अवस्था में व्यक्ति के मानसपटल पर जो उल्लास निरन्तर छाया रहता है; उसके कारण प्रकृति उसको सुखदायिनी प्रतीत होती है और उसके अपने अन्तःकरण की आनन्दानुभूति सर्वत्र प्रफुल्लता का ही दर्शन कराती है। इसी प्रकार वियोग की अवस्था में मानसपटल की विषादमय स्थिति के कारण प्रकृतिसुख मनुष्य के लिये पीड़ादायक सिद्ध होता है।

प्रकृतिमर्मज्ञ महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रकृति को आलम्बन मानकर उसके प्राकृतिक स्वरूप का अत्यन्त संश्लिष्ट एवं कलात्मक चित्रण किया है। उनके इस संश्लिष्ट–चित्रण में कलात्मकता होते हुए भी प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य अक्षुण्ण रहा है। दिन, रात, ऋतुएँ, आकाश, वन, तपोवन, नदी, समुद्र, पर्वत, पशु, पक्षी, सरीसृपादि प्रकृति के विविध जड़–चेतनों का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करते हुए महाकवि की सहृदयता सर्वत्र उपस्थित रही है और कल्पना की क्लिष्टता ने कहीं भी उनके प्राकृतिक चित्रण की स्वाभाविकता में कोई अवरोध नहीं उपस्थित किया है। प्रकृति के सम्पर्क से भावविभोर हो जाने वाले महाकवि ने स्वयं को उसके निस्सीम साम्राज्य में स्वच्छन्द छोड़कर उससे अनेक हृदयग्राही चित्रों का संकलन किया है। महाकवि कालिदास के प्रकृति–चित्रण की एक विलक्षण विशेषता यह है कि यदि ये चित्रण दिव्यपात्रों एवम् अलौकिक स्थलों से सम्बद्ध नहीं भी हुआ करते हैं, तो उसमें स्वाभाविकता एवं भौगोलिक सत्य अवश्य वर्तमान रहते हैं। उनका चित्रण पूर्णतः देश–काल के अनुरूप होता है। जैसा कि चारों दिशाओं में रघु की सेना का प्रयाण दिखाकर कवि ने देश की भौगोलिक विशेषताओं का उद्घाटन कर दिया है।[1]

सर्वोत्तम महाकाव्य के रूप में स्वीकृत महाकवि कालिदास प्रणीत लक्षितमहाकाव्य **'रघुवंशम्'** का प्रारम्भ ही रघुजन्म की पूर्वपीठिका के रूप में प्रकृति के सुरम्य वातावरण (वशिष्ठाश्रम) में महाराज दिलीप एवम् उनकी पत्नी महारानी सुदक्षिणा के प्रवेश के साथ होता है; जहाँ महर्षि वशिष्ठ अपने आश्रम में विद्यमान नन्दिनी गौ की सेवा के लिए निःसन्तान दम्पती महाराज दिलीप और महारानी सुदक्षिणा को आवश्यक कर्तव्य कर्मों का समुचित निर्देश देते हैं। एकाग्रचित्त सपत्नीक महाराज दिलीप की कर्त्तव्यनिष्ठा, परिचर्या एवं भक्ति–परायणता से प्रसन्न 'नन्दिनी' महाराज दिलीप को पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद देती है। इस प्रकृति–प्रतिष्ठित महाकाव्य 'रघुवंशम्' में महाकवि कालिदास ग्रीष्मकालीन दिन और रात का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बढ़े हुए ताप वाले दिन और छोटी हुई रात आपसी मनमुटाव के कारण अलग होकर बैठे हुये, पश्चात्ताप करते हुए पति और पत्नी के समान प्रतीत हो रहे हैं।[2] इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन पुष्प खिली हुई चमेली के मकरन्द–लोलुप भ्रमर का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास जी कहते हैं कि वनों में चमेली की सुगन्ध फैलाने वाली खिली हुई कलियों में से प्रत्येक कली पर बैठता हुआ, भ्रमर गुन–गुनाते हुए, मानो उन कलियों की गणना कर रहा है।[3] महाकवि ने यहाँ पर खिले हुए पुष्पों पर बैठे हुए भ्रमरों को उनकी गिनती–सी करते हुए वर्णित करके प्रकृति–दर्शनजन्य अपनी भावना का सहज निरूपण किया है।

महाकवि कालिदास ने प्रायः दिन के विभिन्न प्रहरों का अपनी प्रत्येक कृतियों में वर्णन किया है। उदाहरणतया आलम्बन विभाव की परिस्थित को अंकित करते हुये, रघुवंशम् में प्रप्यूष–वर्णनक्रम में लिखा है कि प्रातःकालीन क्षीणप्रकाश वाले चन्द्रमा के कारण स्वल्प तारों वाली रात्रि के समान आपन्नसत्त्वा महारानी सुदक्षिणा हल्की पीली एवं कृशकाय हो गयी हैं।[4] प्रातःकाल में वृक्षों के लाल–लाल किसलयों पर गिरने वाले ओसकणों के बहाने महाकवि कालिदास ने नायिका का स्मितिजन्य अत्यन्त हृदयाह्लादक चित्रण करते हुये, लिखा है कि मुक्ताहार की उज्ज्वल मुक्ताओं के समान निर्मल ओसकण,

वृक्षों के लाल–लाल पत्तों पर गिरकर वैसे ही सुशोभित हो रहे हैं, जैसे हँसते समय तुम्हारे लाल–लाल ओष्ठों पर पड़ी हुई, तुम्हारे दाँतों की चमक सुन्दर प्रतीत होती है।[5]

प्रातःकालीन जीव–जन्तुओं की स्वाभाविक क्रियाओं के वर्णनक्रम में महाकवि कालिदास जी लिखते हैं कि लव–कुश के गीत पर अश्रुमोचन करती हुई 'राम' की सभा को प्रातःकाल के समय वनस्थली के वृक्षों से टप–टप गिरती हुई ओस की बूँदों के समान बतलाया है।[6] किम्बहुना 'रघुवंशम्' में महाकवि ने अस्त होते हुए सूर्य के साथ आश्रम की ओर लौटती हुई धेनु **'नन्दिनी'** का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन किया है, जहाँ सूर्य की उस प्रभा ने और मुनि की उस धेनु ने, जो किसलयों के वर्ण जैसी अरुण थीं, अपने संचार से दिशाओं को पवित्र करने के उपरान्त, संध्या के समय विश्रामस्थल की ओर जाना आरम्भ कर दिया।[7] इस प्रकार सायंकाल में 'नन्दिनी' के पीछे–पीछे चलते हुये, आश्रम की ओर लौटते हुये, महाराज दिलीप और 'नन्दिनी' की अगवानी के लिये आती हुई महारानी **सुदक्षिणा** से युक्त वह धेनु **'नन्दिनी'** वैसे ही सुशोभित हो रही थी, जैसे दिन और रात्रि के बीच **'सन्ध्या'** सुशोभित होती है।[8]

वस्तुतः प्रकृति के प्रत्येक मनोहारी दृश्य की सुषमा में अहर्निश अवगाहन करने वाले महाकवि कालिदास को चन्द्रमा के सौन्दर्य ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। 'रघुवंशम्' में महाकवि कालिदास जी लिखते हैं कि तारों, ग्रहों एवं नक्षत्रों से परिपूर्ण होने पर भी रात्रि तभी प्रकाश युक्त होती है, जब वह चन्द्रमा से युक्त होती है।[9] इसी प्रकार मुख की प्रफुल्लता एवं कान्ति की प्रतीति के लिए **'चन्द्रमा'** महाकवि कालिदास का सुप्रसिद्ध उपमान है। रघु के मुखसौन्दर्य के दर्शन को महाकवि ने चन्द्रदर्शन जैसा अत्यन्त आह्लादकारी वर्णित किया है।[10] किम्बहुना नित्यप्रति बढ़ते हुए बालक **रघु** की तुलना महाकवि ने सूर्य की किरणों से वृद्धि पाते हुए **चन्द्रमा** से की है–

पितुः प्रयत्नात्स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः।। रघुवंशम्।।03/22।।

हिमालय के प्रति अनन्य अनुराग के कारण महाकवि ने प्रायः अपनी सभी कृतियों में हिमालय–वर्णन का अवसर निकाल लिया है। प्रातःकालीन आतप से लाल, गिरते हुए झरनों से युक्त हिमालय के शिखरों के सौन्दर्य को भी महाकवि ने अत्यन्त कुशलता पूर्वक प्रस्तुत किया है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में महाकवि ने उनकी सेना के हिमालय तक पहुँचने का वर्णन कर हिमालय की विभूतियों को भी परिगणित किया है। जहाँ भोजपत्रों में मर्मर करती हुई, बाँसों में ध्वनि उत्पन्न करने वाली, गंगा की शीकरों से शीतल वायु ने रघु की सेवा की। भगवती 'गंगा' जब प्रयाग में 'यमुना' से संगम करती है, तब उसकी अनिर्वचनीय शोभा महाकवि के हृदय को अभिभूत कर लेती है, जिससे मंत्रमुग्ध महाकवि ने इस सुषमा को उन सभी कसौटियों पर तौलने का प्रयास किया है, जो उसने सौन्दर्यमापन के निमित्त बना रखा है। कहीं वह इन्द्रनीलमणि जटित मणिमाला–सी प्रतीत होती है, तो कहीं नीलकमलों से युक्त पुण्डरीक–माला जैसी दिखायी देती है।[11] गंगा–यमुना–संगम का यह अत्यन्त भव्य एवं संश्लिष्ट चित्रण है। यद्यपि महाकवि ने अच्छे से अच्छे नवीन चित्रों को उपस्थापित किया है, तथापि उससे 'संगम' के सौन्दर्य की रमणीयता में कोई कमी नहीं आयी है। इसके अतिरिक्त कपिशा, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु आदि नदियों का वर्णन भी प्रसंगानुसार महाकवि ने रघुवंश–महाकाव्य में किया है।

ध्यातव्य है कि महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में वनों का भरपूर चित्रण किया है, किन्तु कहीं भी उन्होंने भवभूति के समान उनकी निर्जन भीषणता का गम्भीर वर्णन नहीं किया है; अपितु प्रकृति के स्निग्ध कोमल एवं सौन्दर्य–समुज्ज्वल पक्ष को ही उन्होंने प्रधानता दी है। 'रघुवंशम्' के प्रथम सर्ग में महाकवि ने वन्य वृक्षों की सुगन्धि से लदे हुए पवन का वर्णन किया है, जहाँ वन्यवृक्षों की पत्तियों को आन्दोलित करने वाले एवं शाल की गोंद की सुगन्धि से परिपूर्ण, पुष्परेणु को उड़ाने वाले वायु ने उन दोनों (महाराज दिलीप एवं महारानी सुदक्षिणा) की सेवा की।[12]

'रघुवंश' के समुद्रवर्णन में महाकवि ने सेतुबन्ध युक्त समुद्र को आकाशगंगा द्वारा दो भागों में बँटे हुए आकाश के सदृश देखा है, जैसा कि श्रीराम कहते हैं कि हे सीते! फेन से परिपूर्ण इस समुद्र को देखो, जिसे मेरे द्वारा बनाए गये नए पुल ने मलयपर्वत तक इस प्रकार दो भागों में बाँट दिया है, जैसे सुन्दर तारों से भरे हुए शरद् ऋतु के खुले आकाश को आकाशगंगा दो भागों में बाँट देती है।[13] दूर से लोहे के पहिए के सदृश, खारे जल वाले सागर का तमाल और ताड़ के वनों की पंक्ति से नीला प्रतीत होने वाला तट, ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानों चक्र की धार पर काई लग गई हो।[14] किम्बहुना वनों से युक्त भूमि दूर होते हुए समुद्र में से मानों निकल–सी रही है।[15]

महाकवि कालिदास को सुगन्धित पुष्पों एवं वृक्षों का वर्णन करना अत्यन्त प्रिय है। उनके काव्य में कमल एवं कुमुद की भरमार है, यद्यपि अन्य पुष्पों का वर्णन भी प्रचुर रूप में प्राप्त होता है। वसन्त ऋतु के आगमन से कमलवन की शोभा में किस प्रकार अभिवृद्धि हो जाती है, इसका संकेत महाकवि ने उन पर मँडराते हुए भ्रमरों एवं हंसों के वर्णन के द्वारा किया है। **वसन्त** की शोभा से लदी हुई ताल की कमलिनी के आस–पास भ्रमर एवं हंस घूमने लगे।[16] इसके अतिरिक्त पुष्पहीन वटवृक्ष आदि के निरीक्षण में भी महाकवि को उतना ही आनन्द प्राप्त हुआ है, जितना कि आमूल पुष्पों से लदे हुए अशोकवृक्ष के निरीक्षण में, क्योंकि वह प्रकृति के सभी सहज रम्य अंगों का अनुरागी हैं। वनवास से लौटते हुए 'राम' सीता को एक वटवृक्ष दिखलाते हुये कहते कि जिससे पहले तुमने कुछ याचना की थी, यह वही वटवृक्ष काला–सा प्रतीत हो रहा है, जो लाल–लाल फली हुई पीपलियों से ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानों पद्मराग मणियों से युक्त मरकत मणियों की राशि हो।[17]

महाकवि कालिदास की आश्रमवासी मुनिकन्यकाएँ, पक्षियों की सुविधाओं का इतना ध्यान रखती थीं कि आश्रम में आलवाल के जल पीने वाले पक्षियों को निर्भय करने के लिए वृक्षों को सींचने के उपरान्त पेड़ों से हटकर दूर खड़ी हो जाती थीं।[18] प्रकृति के सर्वाधिक सरल एवं सुन्दर पशु 'मृग' का वर्णन भी महाकवि ने अनेक बार किया है। मृगों का झुण्ड बनाकर चलना और उस झुण्ड में चलती हुई मृगियों का अपने शावकों को दूध पिलाने के लिए रुक–रुक कर जाना, वनस्थली का एक अत्यन्त स्वाभाविक दृश्य है।[19] इसी प्रकार नन्दिनी (गाय) का वर्णन करते हुए महाकवि लिखता है कि बछड़े को देखने पर वात्सल्य के कारण यज्ञ के स्नानजल से भी अधिक पवित्र गर्म दुग्धधारा को अपने स्तनों से प्रवाहित करती हुई, वन से लौटी।[20]

महाकवि कालिदास ने हाथियों के स्वभाव एवं उनकी गतिविधियों का भी विस्तृत अध्ययन किया है। हाथियों की प्रिय क्रीड़ा **'जलविहार'** का स्वाभाविक दृश्य उन्होंने अप्रित रूप में उपस्थापित करते हुये लिखा है कि यह हाथी शब्द करता हुआ, अपनी शुण्ड को सिकोड़ता एवं फैलाता हुआ, तीर की ओर आता हुआ गज, बड़ी–बड़ी तरल–तरंगों को चीरता हुआ, ऐसा प्रतीत हुआ, मानो अर्गलाभंजन में लगा हुआ हो। पर्वततुल्य यह हाथी शैवालजाल को अपने वक्ष से खींचता हुआ स्वयं तो तट पर बाद में पहुँचा, पर उसके द्वारा उठाई गई जल की लहरें पहले ही तट पर पहुँच गई–

संहारविक्षेपलघुक्रियेण हस्तेन तीराभिमुखः सशब्दम्।
बभौ स भिन्दन्बृहतस्तरंगान्वार्यर्गलाभंग इव प्रवृत्तः।।

शैलोपमः शैवलमंजरीणां जालानि कर्षन्नुरसा स पश्चात्।
पूर्वं तदुत्पीडित–वारिराशिः सरित्प्रवाहस्तटमुत्ससर्प।। रघु.।। 5/45–46।।

विरह–विधुरों के शत्रु एवं कामिजनों के प्रिय कोकिल एवं भ्रमर महाकवि कालिदास की कृतियों में सर्वत्र दिखाई देते हैं। आम्रमंजरी पर बैठी हुई कोकिल के मधुमय संदेश को महाकवि ने अनन्यभाव से सुना है–

प्रथममन्यभृताभिरुदीरिताः प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगन्धिषु शुश्रविरे गिरः कुसुमितासुमिता वनराजिसु।। रघुवंशम्।। 09/34।।

सूर्य के प्रचण्ड ताप एवं चन्द्रमा की स्पृहणीय चन्द्रिका के साथ **ग्रीष्म ऋतु** जहाँ अपनी भयंकरता से जड़ एवं चेतन को व्याकुल करने लगती है, वहीं कामिजन नाना प्रकार के शीतोपचार एवं जलविहार आदि के द्वारा इसकी असह्यता को भी सुखद बना लेते हैं। शीतल रात्रियाँ, सुरभित पुष्पमालाएँ इत्यादि, संयोगसुख में अभिवृद्धि करती हैं। मनोहर गन्धवाली आम्रमंजरी, पुरानी मदिरा एवं नवीन पाटलपुष्पों को लाकर **ग्रीष्म ऋतु** कामी जनों के सभी अभावों को दूर कर देती है।[21]

महाकवि कालिदास की दृष्टि में स्त्रियों एवं पुरुषों, दोनों की प्रणय–भावनाओं को विविध प्रकार से उत्तेजित करने में **वर्षा ऋतु** का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्षा के कारण प्रकृति का बाह्यस्वरूप जितना मनोहारी हो जाता है, उतना ही वियोगी के लिए संतापकारी भी हो जाता है। प्राकृतिक रम्यता का आनन्द प्रियसाहचर्य के बिना व्यर्थ हो जाता है। प्रायः वियोगी जनों से सम्बद्ध प्रकृति–व्यापार पुनः आविर्भूत होकर उसकी स्मृति को द्विगुणित कर देते हैं। बादलों का 'गर्जन' राम को उस वर्षा की याद दिला देता है, जो प्रिया सीता के साथ व्यतीत हुई थी। राम कहते है, प्रिये! मेघगर्जन से भयभीत होकर तुम्हारे द्वारा दिए जाने वाले आलिंगन का स्मरण करते हुए, कन्दरा में विस्तार पाती हुई मेघध्वनि को मैंने न जाने कैसे सहन किया था?[22]

इस प्रकार प्रकृति के विभिन्न दृश्य मानव–मन में किस प्रकार विविध उत्कण्ठाओं एवम् आकांक्षाओं का आलोडन करते हैं, इसका चित्रण करके महाकवि कालिदास ने अन्तः एवम् बाह्य प्रकृति के घनिष्ठ सम्बन्धों की सम्यक् व्यंजना की है। वन्य–लताओं को भी महाकवि ने हाव–भावमयी ललनाओं के रूप में देखा है। खण्डिता एवं प्रोषितपतिका नायिका की करुणदशा का भी महाकवि ने प्रकृति में साक्षात्कार किया है। **वसन्त ऋतु** में **रात्रि** उसी तरह क्षीण होने लगती है, जैसे नायक–परित्यक्ता नायिका। जिस प्रकार प्रियतम से समागम न होने के कारण खण्डिता–नायिका कृशकाय हो जाती है, उसी प्रकार मधु ऋतु द्वारा त्यागी गई एवं चन्द्रोदय से पीली पड़ी हुई मुखछवि वाली रात्रि रूपी वधू कृश हो गई।[23]

महाकवि कालिदास के प्राकृतिक उपादानों में अतिथि–सत्कार की भावना भी कूट–कूटकर भरी हुई है, जिन्हें प्रकृति के लता–वृक्षादिकों में सर्वत्र देखा जा सकता है। नन्दिनी की परिचर्या के लिए वन जाते हुए दिलीप का स्वागत वनवृक्षों एवं वनलताओं के द्वारा किया जाता है। अनुचरों को विदा कर देने वाले वरुण के समान महाराज दिलीप के लिए वृक्षों ने उन्मत्त पक्षियों के कलरव के बहाने, जय–जयकार शब्द किया। पवनप्रेरित बाल–लताओं ने अग्नि के समान परम तेजस्वी महाराज के ऊपर पुष्पवर्षा करके उसी प्रकार स्वागत किया, जैसे पुर–वनिताएँ खीलों के प्रक्षेपण से स्वागत किया करती हैं।[24]

महाकवि कालिदास विषादग्रस्त व्यक्ति के प्रति सहानुभूति की भावना का प्रकृति में साक्षात्कार करते हैं। महारानी इन्दुमती के लिए विलाप करते हुए महाराज अज के साथ **अशोक वृक्ष** भी अश्रुमोचन करने लगता है, जैसा कि महाराज अज कहते हैं, हे सुन्दर शरीर वाली! दूसरों के लिए अत्यन्त दुर्लभ, दोहदार्थ दिए गए बजते हुए नूपुरों से युक्त तुम्हारे चरणों के आघात को याद करता हुआ, आँसुओं को बहाता हुआ यह पुष्प रूपी अशोक, तुम्हारे लिए दुःखी हो रहा है।[25] किम्बहुना श्रीराम–परित्यक्ता, निर्वासिता सीता के करुण–क्रन्दन ने सम्पूर्ण वनप्रान्त को करुणा से आप्लावित कर दिया। वन भी उनके

दुःख से दुःखी होकर रोने लगा। मयूरों ने नृत्य करना छोड़ दिया। वृक्षों ने पुष्प और मृगियों ने प्राप्त तृण त्याग दिए। इस प्रकार उनके प्रति सहानुभूति से युक्त वन भी अत्यन्त रुदन करने लगा।[26]

नवयौवन की तेजस्विता एवं वार्धक्य की निष्प्रभता की व्यंजना महाकवि ने अत्यन्त सुन्दर उपमानों के माध्यम से की है, जिसमें पूर्ववर्ती राजा ने संन्यास ग्रहण कर लिया था और अनुवर्ती नया राजा सिंहासनारूढ़ हुआ था। उस कुल ने ऐसे आकाश की समता प्राप्त की, जिसमें चन्द्रमा छिप रहा हो और सूर्य निकल रहा हो।[27] पुत्र की मुखछवि को देखते हुए आत्मविभोर हो जाने वाले पिता की दशा एवं उसके उल्लास की अभिव्यक्ति भी महाकवि ने इसी प्रकार अत्यन्त रमणीय शब्दों में करते हुये लिखा है कि वायु न चलने के कारण निष्कम्प कमल की भाँति शान्त नेत्रों से पुत्र के सुन्दर मुख को पीते हुए–से राजा का बढ़ा हुआ उल्लास उसी प्रकार उमड़ कर उनकी आत्मा में न समा सका, जिस प्रकार चन्द्रदर्शन से समुद्र में ज्वार नहीं समाता है–

निवातपद्मस्तमितेन चक्षुषा नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम्।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद् गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।। रघुवंशम्।। 3/17।।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त पद्य में उमड़ते हुए उल्लास की अभिव्यंजना कराने के लिए समुद्र के ज्वार से अधिक उपयुक्त कोई अन्य उपमान नहीं हो सकता। इस प्रकार वर्ण्य परिस्थिति को प्रकृति के उतने ही सुन्दर दृश्यों से उद्भासित कर देना महाकवि कालिदास की महती विशेषता है और उनकी कृतियों में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के दर्शन होते हैं। स्वयंवर–मण्डप में सखी, **इन्दुमती** को एक राजा के पास से दूसरे राजा के पास तक किस प्रकार पहुँचाती है, इसे बतलाते हुए महाकवि ने प्रकृति के अत्यन्त रमणीय दृश्य को प्रस्तुत करते हुये कहा है कि वेत्रधारिणी ने उस राजकन्या को उसी प्रकार दूसरे राजा के निकट पहुँचाया, जिस प्रकार वायु से उठी हुई तरंगमाला मानसरोवर की राजहंसी को दूसरे कमल तक पहुँचा देती है–

तां सैव वेत्रग्रहणे नियुक्ता राजान्तरं राजसुतां निनाय।
समीरणोत्थेव तरंगलेखा पद्मान्तरं मानसराजहंसीम्।। रघुवंशम्।। 06/26।।

इस प्रकार 'रघुवंशम्' में शायद ही कोई ऐसा वर्ण्यविषय होगा, जिसके उत्कर्ष के लिए कालिदास के पास बिल्कुल वैसे ही भाव, प्रभाव एवम् अवस्था विशेष से समन्वित प्राकृतिक उपमान न हों। अन्तःपुर की आपन्नसत्वा रानियों की समता महाकवि ने धान की उन बालियों से किया है, जिनमें दाने पड़ गए हैं–

सममापन्नसत्त्वास्ता रेजुरापाण्डुरत्विषः।
अन्तर्गतफलारम्भाः सस्यानामिव सम्पदः।। रघुवंशम्।। 10/59।।

महाकवि कालिदास का मन्तव्य है कि स्वभाव से शीतल जल में जिस प्रकार उष्ण वस्तु का सम्पर्क कुछ काल के लिए उष्णता उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार अपराध करने पर ही महात्मा व्यक्ति उत्तेजित हो जाया करते हैं, अन्यथा वे स्वभाव से क्षमाशील ही होते हैं, जैसा कि प्रियदर्शनपुत्र प्रियम्वद कहता है कि मेरे विनम्र होकर प्रार्थना करने पर क्रुद्ध मुनि 'मृदुल' हो गए। अग्नि एवम् आतप के संयोग से ही जल में उष्णता आती है, अन्यथा शीतलता ही जल का स्वभाव है।[28]

अपने वर्ण्यविषय को प्रस्तुत करने का जो ढंग महाकवि कालिदास की लेखनी में देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, जैसा कि पुत्रवियोग में प्राण त्यागने का श्रवणकुमार के पिता के द्वारा दिया गया शाप पुत्रप्राप्ति की आशा देकर निःसन्तान महाराज दशरथ को अपने प्रति हितकारी प्रतीत होता है, जैसे दावाग्नि वन को जलाकर 'वनभूमि' को अधिक उपजाऊ बना दिया करती है। अतः वे कहते हैं कि आपका यह शाप भी पुत्र के सुकुमार मुखकमल को देखने से वंचित मेरे लिए अनुग्रह युक्त हो गया।[29]

प्राकृतिक उपमानों के आकर महाकवि कालिदास के **'कुमारसंभवम्'** महाकाव्य में प्रीति और तपस्या से ओत–प्रोत सर्वत्र लोककल्याण की भावना दिखाई देती है। सत्रह सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में भगवान शिव और भगवती पार्वती के पराक्रमशाली पुत्र कार्तिकेय के जन्म तथा उनके द्वारा देवसैन्य का नायकत्व ग्रहण करके भयंकर असुर 'तारक' के संहार की कथा निबद्ध की गयी है। इस महाकाव्य का केन्द्रीय वक्तव्य शिव और पार्वती का विवाह है, जो अपने मूलभाव में, पुरुष तथा प्रकृति के मांगलिक मिलन का प्रतीक है। इस इतिवृत्त में आत्मा के द्वारा परमेश्वर की खोज एवं प्राप्ति का प्रतीकात्मक सन्देश भी निहित है। पार्वती के शिवोपलब्धि सम्बन्धी अनुष्ठानों में यह भाव सर्वत्र देखा जा सकता है। महाकवि की रसलोलुप चेतना का हृदयावर्जक निदर्शन नवयौवना पार्वती के रूप–सौन्दर्य के स्वाभाविक चित्रण में सर्वत्र उपलब्ध होता है। भगवती पार्वती जब चलती हैं, तो उनके निसर्गतः लाल एवं कोमल चरणों के उठे हुए अँगूठों के नखों से निकलने वाली चमक को देखकर, ऐसा प्रतीत होता है मानों पग–पग पर कमल उगते जा रहे हों। इस प्रकार महाकवि कालिदास प्रकृति के अनुरंजनकारी मधुर दृश्यों के चित्रण में सभी कौशलों से परिपूर्ण हैं। 'कुमारसम्भवम्' के सत्रहवें सर्ग में वारुणास्त्र से आरम्भ होने वाली वर्षा के चित्रण में कवि ने उसके भीषणस्वरूप का भी अंकन किया है। भीषण गड़गड़ाहट युक्त मेघों और अपनी भयावह दमक से दशों दिशाओं को चकाचौंध कर देने वाली विद्युत ने कविहृदय को विस्मय–विमुग्ध कर दिया है–

घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगांतकालानल प्रबलधूमनिभो नभोऽन्ते।
गर्जारवैर्विघटयन्नवनीधराणां, शृंगाणि मेघनिवहो घनमुज्जगाम।।

विद्युल्लता वियति वारिदवृंदमध्ये गंभीरभीषणरवैः कपिशीकृताशा।
घोरा युगान्तचलितस्य भयंकराथ कालस्य लोलरसनेव चमच्चकार।। कुमार.।।17/41–42।।

'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के आठवें सर्ग में महाकवि कालिदास ने संध्या, सूर्यास्त एवं चन्द्रोदय के कारण आकाश की रमणीय शोभा का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण करते हुये, प्रकृति के अनेक उपकरणों एवं विविध व्यापारों का अत्यन्त संश्लिष्ट वर्णन किया है। गन्धमादन पर्वत पर विहार करते हुये शिव और पार्वती देखते हैं कि संध्याकाल में अस्तोन्मुख सूर्य का तेज इतना कम हो गया है कि उनकी ओर सरलता से देखा जा सकता है।[30] दिन में जब पर्वतीय निर्झरों के जल पर सूर्य की किरणें पड़ती थीं तो वहाँ इन्द्रधनुष से प्रतीत होने लगते थे, परन्तु संध्याकाल में सूर्य का ताप कम हो जाने से वे इन्द्रधनुष समाप्त हो गये हैं।[31] सरोवरों के जल में अस्तोन्मुख सूर्य की समतल कान्ति पड़ने से एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया है। शिव जी 'पार्वती' से कहते हैं, हे मितमाषिणी! देखो, पश्चिम दिशा में अस्त होते हुए सूर्य ने जल में पड़ते हुये अपने प्रतिविम्ब से मानों एक स्वर्णिम पुल सा निर्मित कर दिया है।[32] सूर्य के बिल्कुल अस्त होने के क्षण सूर्य को पश्चिम दिशा के मस्तक को शृंगारबिन्दु जैसा वर्णित करते हुये, महाकवि ने अपने पर्यवेक्षण की कुशलता को अभिव्यंजित करते हुये, लिखा है कि अत्यन्त दूर परिलम्बित किरणों वाले लाल–सूर्य के कारण पश्चिम दिशा उस **कन्या** जैसी प्रतीत हो रही है, जिसने अपने भाल पर केसर–युक्त बन्धुजीव पुष्प का तिलक लगा लिया हो। उस समय हिमालय के पशुओं, वृक्षों, पर्वतों आदि की स्वाभाविक लालिमा भी सूर्यातप की अरुणिमा जैसी प्रतीत हो रही है–

दूरमग्रपरिमेयरश्मिना वारुणी दिगरुणेन भानुना।
भाति केसरवतेव मण्डिता बन्धुजीवतिलकेन कन्यका।। कुमारसम्भवम्।। 08/40।।

किम्बहुना सन्ध्याकाल में आकाश में विचरण करने वाले मेघखण्ड भी संध्याकालीन रंगों से रंजित हो उठते हैं। भगवान शिव 'पार्वती' को लक्ष्य करके कहते हैं, हे घुँघराले केशोंवाली! सामने लाल, पीले और भूरे रंग के मेघखण्ड ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो तुम उन्हें देखोगी, इसी निमित्त संध्या ने उन्हें अपनी तूलिका से अच्छी तरह सजा दिया हो–

रक्तपीतकपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिलकेशि भान्त्यमूः।
द्रक्ष्यसि त्वमिति संध्ययाऽनया वर्तिकाभिरिव साधुमण्डिताः।। कुमारसम्भवम्।। 8.45।।

धीरे–धीरे यह संध्याकाल समाप्त हो जाता है। सूर्य के अस्त होते–होते रात्रि का आगमन होने लगता है और रात्रि तथा दिन की सन्धि से उत्पन्न होने वाले संध्याकालीन प्रकाश के सुमेरु पर्वत से अवरुद्ध हो जाने पर यह घोर अन्धकार स्वेच्छया सभी दिशाओं में फैल जाता है।[33] रात्रिकालीन अन्धकार के चारों ओर फैल जाने से दृष्टि न ऊपर देख पाती है, न नीचे, न चारों ओर, न सामने, न पीछे। यह संसार उसी प्रकार अंधकार पटल से घिरा हुआ है, जैसे गर्भस्थ शिशु चारों ओर जेर रूपी आवरण से आवृत्त रहता है। अहो असज्जनों की महिमा! अन्धकार ने स्वच्छ और मलीन, स्थिर एवं गतिशील, सीधे एवं टेढ़े सभी के अन्तर को मिटाकर उन्हें एक समान बना दिया है–

नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः।
लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि।।

शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ् महत्त्वमसतां हृतान्तरम्।।
कुमारसम्भवम्।। 8/56–57।।

अन्धकार का यह साम्राज्य भी कुछ समय के ही लिए ही था। धीरे–धीरे चन्द्रोदय की बेला आने लगी और पूर्व दिशा में प्रकाश फैलने लगा, जैसा कि शिव जी कहते हैं, हे कमलवदने! निश्चय ही यज्ञों का स्वामी चन्द्रमा रात्रि के अंधकार का निवारण करने के लिए निकल रहा है। अतः **'पूर्व दिशा'** मानो केतकी के श्वेत पराग से उज्ज्वल हो गई है–

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।
पुण्डरीकमुखि! पूर्वदिङ्मुखं केतकैरिव रजोभिराहतम्।। कुमारसम्भवम्।। 08/58।।

मन्दरान्तरितमूर्ति चन्द्र पूर्णतः उदित नहीं हो पाया है, किन्तु नक्षत्र निकल आए हैं। कुछ ही देर में प्रियंगु के फल की भाँति लाल चन्द्र भी निकल आया। इस दृश्य को देखकर शिव जी कहते हैं कि पके हुए प्रियंगुफल के सदृश लाल कान्तिवाले चन्द्रमा और उसके प्रतिविम्ब से युक्त सरोवर के जल द्वारा मानों रात्रि के समय वियुक्त हुए चक्रवाक–मिथुन का अनुकरण किया जा रहा है।[34] क्रमशः पूर्णचन्द्रोदय से रात्रिकालीन अन्धकार दूर हो गया है और कमल संकुचित हो गए हैं। इस दृश्य की मनोहरता को मानवजगत् से ली गई एक सुन्दर उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने और अधिक सहृदय–हृदयग्राह्य बना दिया है, जहाँ किरण रूपी अँगुलियों से अन्धकार रूपी केशों को हटाकर चन्द्रमा मानो रात्रि रूपी नायिका के उस मुख को चूम रहा है, जिसके कमल रूपी नेत्र बन्द हो गए हैं।[35] चतुर्दिक् पर्वतीय प्रान्त में किस प्रकार चन्द्रिका बिखर जाती है।

इसका पर्यवेक्षण भी कवि ने आत्मविभोर होकर किया है। पर्वत की चोटियों पर चन्द्रज्योत्स्ना फैल गई है, किन्तु इस पर्वत के ऊँचे–नीचे होने के कारण चाँदनी भी कहीं–कहीं अंधकार युक्त हो गयी है और ऐसी प्रतीति होती है, मानो किसी मतवाले हाथी की अनेक प्रकार की चित्रकारी से युक्त शोभा हो–

उन्नतावनतभाववत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्बहुविधाभिरर्पिता भाति भूतिरिव मत्तहस्तिनः।। कुमारसम्भवम्।। 08/69।।

ज्ञातव्य विषय है कि पर्वतों से महाकवि को विशेष प्रेम है, विशेषतः हिमालय तथा कैलास का वर्णन उन्होंने अत्यन्त अनुराग पूर्वक किया है। हिमालय की विशालता का भव्य चित्रण महाकवि ने एक ही वाक्यांश में **'स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः'** कहकर कर पूर्ण कर दिया है।[36] अर्थात्, भारतवर्ष के उत्तर में देवतात्मा हिमालय नाम का बड़ा पर्वत है, जो पूर्व और पश्चिम के समुद्रों तक फैला हुआ पृथ्वी के मापदण्ड के सदृश स्थित है। ऐसे हिमालय की अन्य विभूतियों का वर्णन करने के पूर्व ही कवि बता देता है कि उस पर सदैव छाई रहने वाली बर्फ को यदि उसका दोष माना जाय, तो भी कोई विशेष हानि नहीं हैं। अनन्त रत्नों को उत्पन्न करने वाले इस पर्वत की शोभा हिम के कारण समाप्त नहीं हो जाती, क्योंकि गुणों के समूह में यदि एक अवगुण भी हो हो, तो वह उसी प्रकार छिप जाता है, जैसे चन्द्रमा का 'कलंक' उसकी किरणों में छिप जाता है–

अनन्त–रत्न–प्रभवस्य यस्य,
हिमं न सौभाग्यविलोपिजातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते,
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।। कुमारसम्भवम्।। 01/03।।

उपर्युक्त कथन के बाद महाकवि वहाँ की चट्टानों, चारों ओर छाए हुए मेघों, बाँस के वनों में शब्द करने वाली वायु, वनवृक्षों, वनचरों, औषधियों आदि का सुविस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है। इस पर्वत पर मिलने वाले उन भोजपत्रों का वर्णन भी महाकवि ने किया है, जिन पर लिखे हुए अक्षर हाथी की सूँड पर बनी हुई लाल बुँदकियों जैसे प्रतीत होते हैं।[37] गुफाओं में चमकने वाली उन जड़ी–बूटियों को भी कवि ने विस्मृत नहीं किया है, जो रात्रि को प्रकाश देकर दीपक का कार्य करती हैं।[38] वहाँ की गुफाओं के द्वारों पर छाकर मेघ अन्धकार कर दिया करते हैं और वहाँ का पवन शरीर को नवीन स्फूर्ति प्रदान किया करता है। यथा, भागीरथी के जल की फुहारों से युक्त देवदारु वृक्षों को आन्दोलित करने वाली तथा मयूरों के पंखों को छितरा देने वाली जिस वायु का, मृगों की खोज करने वाले किरात सेवन किया करते हैं–

भागीरथीनिर्झरसीकरणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः।। कुमारसम्भवम्।। 1/11।।

हिमालय की जिस चोटी को भगवान शिव ने अपनी तपस्या के लिए चुना है, उसकी शोभा भी अपूर्व है। अर्थात्, गजचर्म ओढ़ने वाले जितेन्द्रिय शिव ने कस्तूरीगन्ध से सुवासित हिमालय की उस चोटी पर निवास बनाया, जहाँ के देवदारु वृक्षों को गंगा का प्रवाह सींचा करता है और जहाँ गन्धर्व गीत गाया करते हैं–

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारुः।
पस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्क्वणत्किन्नरमध्युवास।। कुमारसम्भवम्।। 1/54।।

किम्बहुना चन्द्रमा के सुन्दर विम्ब के स्फटिक में मिल जाने पर उसका कलंक उस पर्वत पर गौरी द्वारा प्रेमपूर्वक लगाए गए कस्तूरीखण्ड के सदृश प्रतीत होने लगता है–

सुविम्बितस्य स्फटिकांशुगुप्तेश्चन्द्रस्य चिह्नप्रकरः करोति।
गौर्यार्पितस्येव रसेन यत्र कस्तूरिकायाःशकलस्य लीलाम्।। कुमारस.।। 9/41।।

जिस समय चन्द्रमा इस पर्वत की चोटी पर आ जाता है, उस समय कैलास हिमाधिपति के मुकुटमणि की शोभा शोभा प्राप्त करता है।[39] भगवान शंकर 'पार्वती जी' के साथ उस मलयपर्वत पर पहुँचे, जहाँ चन्दनलताओं को हिलाने वाला और लौंग के फूलों की केसर से युक्त दक्षिणी पवन, चाटुकार की भाँति पार्वती के श्रम को दूर कर रहा था।[40]

महाकवि कालिदास के अनुसार तपोवन में पोषित सभ्यता ही मनुष्य को वास्तविक शान्ति प्रदान कर सकती है, क्योंकि यहीं मनुष्य का प्रकृति से एकाकार हो सकता है। तपोवनों में प्रकृति अखिल वैषम्य को दूर करके समता के अभ्यास में निरन्तर प्रवर्तमान रहती है। यही कारण है कि कवि ने 'कुमारसम्भवम ' में पार्वती के तपोवन में सहज–विरोधी तत्त्वों के वैमनस्य को भुलाकर शान्त रहने का वर्णन किया है। यहाँ परस्पर विरोधी पशुओं ने भी अपने पहले के वैरभाव का त्याग कर दिया था, जहाँ वृक्ष इच्छित फल, पुष्प आदि से अतिथियों का सत्कार करते थे तथा नवनिर्मित पर्णकुटीरों में जहाँ अग्नि की रक्षा की जाती थी, ऐसा वह तपोवन पवित्र बन गया।[41] उस तपोवन में काला मृग जब अपने सींगों से मृगी के शरीर को खुजलाता है, उस समय मृगी इस सहज स्पर्श के सुख से नेत्र बन्द कर लेती है।[42] इस प्रकार पशु–पक्षियों की सहज चेष्टाएँ एवं विभिन्न मुद्राओं को भी महाकवि ने अपना वर्ण्यविषय बनाया हैं।

यहाँ पर ज्ञातव्य विषय है कि निरपेक्ष प्रकृति को भी महाकवि ने भावों की उद्वेगशील स्थिति में उद्दीपन का कार्य करते हुए चित्रित किया है। कुछ स्थलों पर महाकवि ने प्रकृति का सुन्दरतम निदर्शन उपस्थापित किया है। जहाँ वसन्त आते ही

प्रकृति की शोभा रुचिर एवं मनोहारी रूप धारण कर लेती है। सुन्दर पुष्प, भ्रमरों का गुंजन, पिक की पुकार और पवन से उड़ाए गए मकरन्द की सुगन्धि, मनुष्यों के नेत्र, श्रवण, घ्राण आदि इन्द्रियों को सुख प्रदान करके उनके मन को प्रफुल्लित एवम् एक अपूर्व वासना से परिपूर्ण कर देते हैं। भ्रमर अपनी भ्रमरी के साथ एक ही पुष्प में रस पीने लगता है। हिरन के द्वारा सींग से शरीर खुजाए जाने पर हिरनी आनन्दविभोर होकर नेत्रनिमीलित कर लेती है। हस्तिनी प्रेमपूर्वक कमलपराग से सुवासित जल अपनी सूँड़ से निकालकर हाथी को पिलाती है। चक्रवाक आधी कुतरी हुई कमलनाल का उपहार अपनी चक्रवाकी को देता है। किम्बहुना महाकवि को वृक्ष भी अपनी लता–वधुओं के साथ प्रणयकेलिरत प्रतीत होने लगते हैं। यथा, प्रचुर पुष्प–स्तबक जिनके स्तन थे, काँपते हुए किसलय रूपी ओठों से जो मनोहर लग रही थीं, उन लता रूपी वधुओं ने वृक्षों से झुकी हुई शाखाओं रूपी भुजाओं का आलिंगन प्राप्त किया–

पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र–शाखाभुज–बन्धनानि।। कुमारसम्भवम्।। 3/39।।

इस प्रकार प्रकृति के सुखद वातावरण में मनुष्य को ऐसा अनुभव होने लगता है, मानों पशु–मिथुनों, पक्षि–दम्पतियों, लता–विटपों आदि में पारस्परिक आकर्षण विस्तार पा रहा हो। चराचर की अत्यन्त बढ़ी हुई चाह मानव–मन को भी अनिर्वचनीय माधुर्य से आप्लावित कर देती है। प्रिया के सान्निध्य में प्रकृति का प्रत्येक ऋतु में बदलता हुआ स्वरूप अपनी रम्यता एवं सौम्यता में जहाँ सुखदायी होता है, वहीं वियोगी जनों को असह्य लगने लगता है। कष्टप्रद प्राकृतिक पदार्थ तो उसे दुःख देते ही हैं, सहज रमणीय प्राकृतिक उपकरण भी उसकी व्यथा को उद्दीप्त कर देते हैं। व्यथा का अनुभव करते हुए विरही को सृष्टि के सभी वियुक्त जीवों से स्वतः सहानुभूति हो जाती है। शिव के विरह में तप करती हुई पार्वती रात्रि के समय वियुक्त हुए चक्रवाक– मिथुन को ढाढ़स देती हैं। सुन्दरी मधुश्री के प्रसाधन का तो कहना ही क्या है, जो उड़ते हुए भ्रमर रूपी अंजन से चित्रित तिलक पुष्प को माथे पर तिलक के समान लगाकर, प्रातःकालीन सूर्य की नवलालिमा से आम्र की कोंपल रूपी ओठों को रँग लेती है–

लग्नद्विरेफांजनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य।
रागण बालारुण–कोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार।। कुमारसम्भवम्।। 3/30।।

अन्य नायिका के प्रेम में आसक्त शठ नायक की भाँति कभी–कभी चन्द्रमा अपनी पूर्वप्रिया की हँसी भी उड़ाने लगता है। यथा, जो चन्द्रमा दिन ढल जाने से पहले दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, वही अब रात्रि रूपी नायिका के कहने से चाँदनी के बहाने मुस्कुराता हुआ, पूर्व दिशा के रहस्य को खोल रहा है। वसन्त का मादक वातावरण जहाँ मनुष्यों की वासना को उद्दाम बना देता है, वहीं प्रकृति के जड़ एवं चेतन सभी अंगों को भी उद्विग्न एवम् एक दूसरे के सम्मिलन का आकांक्षी बना देता है। कामव्यग्रता में अभिभूत–सी प्रकृति में आलिंगन, चुम्बन आदि व्यापार आरम्भ हो जाते हैं। टिम–टिमाती हुई तारिका प्रथम बार पति के निकट जाती हुई किसी नवोढ़ा स्त्री की तरह काँपती हुई प्रतीत होने लगती है।[43] किम्बहुना अन्धकार रूपी 'केशपाश' को किरण रूपी अंगुलियों से पकड़कर चन्द्रमा, **'रात्रिनायिका'** के संकुचित कमल रूपी बन्द नेत्रों वाले मुख को चूम रहा है–

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी।। कुमारसम्भवम्।। 8/63।।

उपर्युक्त पद्य में ध्यातव्य विषय है कि रात्रिकाल में कमल संकुचित हो जाते हैं और चन्द्रमा की किरणें क्रमशः तिमिराच्छादित आकाश में फैलने लगती हैं। इस प्राकृतिक दृश्य में महाकवि ने संयोग शृंगार का सुन्दर क्षण खोज लिया है। इसके अतिरिक्त जड़ प्रकृति में व्याप्त मधुक्रीड़ाओं के साथ महाकवि ने चेतन प्रकृति–पतंगों, पक्षियों, पशुओं आदि की संयोग–क्रीड़ाओं का भी समुचित उल्लेख किया है। प्रेम से उल्लसित नरकोकिल और कमल पर बैठकर गुंजन करता हुआ भ्रमर दोनों ही प्रणयकेलि में रत हो जाते हैं। किम्बहुना भ्रमर अपनी भ्रमरी के साथ एक ही कुसुमपात्र में पुष्परसपान करने लगता है–**मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।। कुमारसम्भवम्।। 03/36।।**

परोपकार की उदात्त भावना प्रकृति में व्यापक रूप में प्राप्त होती है। भगवान शिव के वीर्य से दह्यमान अग्नि को शान्ति देने के निमित्त **'गंगा'** ने उसे अपनी ओर बुलाया।[44] अर्थात्, प्रसन्न मन वाली उस गंगा ने आती हुई उस अग्नि को उठी हुई लहरों रूपी हाथों से, उनके कार्य की सिद्धि के लिए बुलाया। कल–कूजन करते हुए, मतवाले हंसों के स्वर में भगवती गंगा **'अग्नि'** से कह रहीं थीं कि मैं लोगों के कष्टों को दूर करके उनका कल्याण किया करती हूँ। तट की ओर बढ़ती हुई, उठी हुई लहरों के द्वारा गंगा मानो प्रसन्नता पूर्वक अग्नि का स्वागत करने के लिये आगे आईं।

इस प्रकार एक बात और सुस्पष्ट है कि सौन्दर्य के मधुर एवं कोमल स्वरूप के उपासक महाकवि कालिदास पुरुषसौन्दर्य–वर्णन के प्रति विशेष उल्लसित नहीं दिखाई देते हैं। नारी–सौन्दर्यचित्रण उनका प्रमुख क्षेत्र है और इस क्षेत्र में उन्होंने प्रकृति के अनेक सुन्दर उपकरणों से अपनी नायिकाओं के सौन्दर्य का सामंजस्य दिखाया है, क्योंकि कालिदास की दृष्टि में मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड केवल प्रकृतिसौदर्य ही है। तेजस्विनी बालिका पार्वती को अपने अंक में धारण करने वाली मेनका उसी प्रकार सुशोभित होती है, जैसे मेघगर्जन से उद्भूत होने वाले विदूर पर्वतों के रत्नांकुरों से वहाँ की भूमि सुशोभित होती है।[45] क्रमशः वयस्क होती हुई पार्वती के अंग–प्रत्यंग उसी प्रकार सौष्ठव को प्राप्त करने लगते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ा करती हैं–

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषांज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।।कुमारसम्भवम्।।1.25।।

नवयौवन से पार्वती का शरीर किस प्रकार विकसित हो उठता है, इसका महाकवि ने अत्यन्त रमणीय चित्रण किया है। यथा, तूलिका से रंग भरने पर जिस प्रकार चित्र खिल उठता है और सूर्य की किरणों से जैसे कमल विकसित हो उठता है, उसी प्रकार सभी ओर से शोभित होने वाला उनका शरीर नवयौवन पाकर खिल उठा।[46] सूर्य की किरणों के स्पर्श से खिलते हुये पुष्प के समान महाकवि ने पार्वती के शनैः शनैः प्रस्फुटित होते हुए यौवन की सशक्त अभिव्यंजना की है। उन्होंने प्रायः पुष्पिता, सुकुमारी लता से नारी–शरीर की तुलना की है। नारी की देहयष्टि के लिए लता कविसमवाय–सिद्ध उपमान है, किन्तु महाकवि कालिदास ने चलती फिरती हुई लता की जो कल्पना की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है– यथा, स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई एवं प्रातःकालीन सूर्य के सदृश लालवर्ण के वस्त्र पहने हुई, वह पार्वती ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो अत्यधिक पुष्पभार से झुकी हुई, कोई चलती फिरती लता हो–

आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां,
वासो वसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्त–पुष्प–स्तबकावनम्रा,
संचारिणी पल्लविनी लतेव।। कुमारसम्भवम्।। 3/54।।

इसी तरह चरणन्यास के समय उठे हुए अंगूठों के नखप्रभा से युक्त, लालिमा को बिखेरते हुए, पार्वती के दोनों चरण, पृथ्वी पर मानों स्थलकमल उगाया करते थे।[47] यहाँ पर भगवती पार्वती के चरणतल की लालिमा की अभिव्यक्ति महाकवि ने सुप्रसिद्ध उपमान कमल के विषय में एक विलक्षण उद्भावना प्रस्तुत की है, क्योंकि क्रमशः उठते–गिरते हुए पग–तलों की स्वाभाविक लालिमा के लिए स्थलकमल उगाने की महाकवि की उत्प्रेक्षा अत्यन्त रमणीय है।

काव्यशास्त्रियों ने स्मित (मुस्कान) का रंग श्वेत माना है और ओठों के लिए प्रायः पल्लव को उपमान के रूप में प्रयोग किया जाता है। पार्वती के 'स्मित' का अत्यन्त हृदयहारी चित्रण महाकवि ने रूपकातिशयोक्ति के द्वारा इसी आधार पर किया है। यदि लाल किसलयों के मध्य कोई श्वेतपुष्प हो अथवा स्वच्छ मूँगों के बीच कोई मोती जड़ा हुआ हो, तब कहीं उस पार्वती के लाल ओठों पर फैली हुई कान्तिवाली मुस्कान का अनुकरण हो सकेगा।[48] दृष्टि के लिए प्रसिद्ध उपमान नीलकमल को कालिदास जी ने नवीनता के सथ प्रस्तुत किया है, साथ ही दृष्टि के लिए दूसरे प्रसिद्ध उपमान मृगी के नेत्रों का संकेत भी कर दिया है। यथा, उन बड़ी–बड़ी आँखों वाली पार्वती ने आँधी में हिलती हुई, नीलकमल जैसी चंचल दृष्टि सम्भवतः मृगियों से ली थी, अथवा मृगियों ने पार्वती से–

प्रवातनीलोत्पल–निर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्याः ।
तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः।। कुमारसम्भवम्।। 01/46।।

प्रकृति की रम्यता से आत्मविभोर महाकवि ने उसके अंग–प्रत्यंग की सुषमा को इतनी पूर्णता से हृदयंगम किया है कि मानव जगत् की प्रत्येक दशा एवं प्रत्येक व्यापार के साम्य में वह प्रकृति से वैसा ही कोई परिचित एवं हृदयग्राही चित्र तुरन्त प्रस्तुत कर देता है। विवाह–संस्कार के पूर्व स्नान करके मंगलवस्त्र धारण करने वाली पार्वती की सुषमा ने महाकवि कालिदास को वर्षाजल से सद्यस्नाता एवं प्रफुल्ल–काश से युक्त वसुधा का स्मरण करा दिया–

सा मंगलस्नानविशुद्धगात्री गृहीतपत्युद्गमनीयवस्त्रा।
निर्वृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे।। कुमारसम्भवम्।। 7/11।।

रत्नखचित आभूषणों से जगमगाती हुई पार्वती की सुन्दरता के लिए महाकवि ने प्रकृति के एक नहीं, अपितु अनेक सुरम्य दृश्यों की उपमान के रूप में योजना की है। उदाहरणतया, जिस प्रकार निकलते हुए पुष्पों से लता, उदय होते हुए नक्षत्रों से रात्रि और बैठे हुए पक्षियों से सरिता सुशोभित होती है, उसी प्रकार आभूषणों से युक्त पार्वती सुशोभित हुई–

सा संभवद्भिः कुसुमैर्लतेव ज्योतिभिरुद्यद्भिरिव त्रियामा।
सरिद्विहंगैरिव लीयमानैरामुच्यमानाभरणा चकासे।। कुमार.।। 7/21।।

ज्ञातव्य है कि प्रसाधनों से युक्त न होते हुए भी सुन्दरी रमणियाँ सुन्दर ही प्रतीत होती हैं। तपस्या के लिए वल्कल वस्त्र धारण कर लेने पर भी पार्वती की रूपछवि में कोई अन्तर नहीं आया, क्योंकि प्रकृति–जगत् में भी देखा जाता है कि सुन्दर वस्तुएँ सौदर्यहीन के सम्पर्क में आकर, अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। जिस प्रकार पार्वती का मुख सुन्दर केशों से प्रिय लगता था, उसी प्रकार जटाओं से युक्त होने पर भी सुन्दर लगा, क्योंकि 'कमल' केवल भ्रमरपंक्ति से युक्त होकर ही शोभित नहीं होता; अपितु शैवाल के संग भी सुन्दर ही लगता है।[49]

अपने दोनों महाकाव्यों में महाकवि कालिदास ने प्रकृति के सुन्दर उपकरणों से सादृश्य दिखाकर नायिकाओं के सौन्दर्य की अतिशयता भली–भाँति अभिव्यक्त कर दी है; तथापि कभी–कभी उसे प्रकृति का सौन्दर्य मानवीय सौन्दर्य की अपेक्षा हीन दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् वर्ण्यविषय की पूर्णता का उसमें अभाव प्रतीत होता है। पुरुष की भुजा को अजगर अथवा तोरण की अर्गला के सदृश दृढ़ एवं शक्तिशाली कहकर सन्तुष्ट हो जाने वाले महाकवि कालिदास को नारी की भुजाओं की सुकुमारता व्यक्त करते समय प्रकृति के कोमलतम उपमान के औचित्य के विषय में सन्देह दिखाई देता है। इसलिए व्यतिरेक अलंकार का आश्रय लेकर पार्वती की भुजाओं को महाकवि ने शिरीषपुष्प से भी अधिक कोमल वर्णित किता है। यथा, पार्वती

की वे दोनों भुजाएँ, जिन्हें पराजित होने पर भी कामदेव ने शिव के गले का हार बना दिया था, वे भुजायें शिरीषपुष्प से भी अधिक सुकुमार हैं।[50] यहाँ महाकवि ने प्रसिद्ध 'उपमान' को 'उपमेय' से हीन वर्णित किया है और उपमेय को उत्कृष्ट सिद्ध किया है। पार्वती के मुख की अनुपम शोभा का वर्णन करते समय भी उन्होंने अनूठे ढंग से प्रसिद्ध उपमानों 'चन्द्र' एवं 'कमल' का अपकर्ष द्योतित कर दिया है। चन्द्रमा में पहुँचकर जिस लक्ष्मी को कोमलता नहीं मिलती थी और कमल में वास करने पर जिसे चन्द्रमा की कान्ति से वंचित रहना पड़ता था, उस चंचला लक्ष्मी ने पार्वती के मुख को प्राप्त करके, दोनों प्रकार का सुख एक साथ पा लिया।[51] यहाँ पर पार्वती के मुख की 'कान्ति' चन्द्रमा से अधिक एवं 'कोमलता' को कमल से अधिक व्यक्त करने की महाकवि की यह अत्यन्त मौलिक उद्भावना है।

इसी प्रकार पार्वती के कण्ठमाधुर्य के सम्मुख कोकिला के कूक को कवि ने अनमिली वीणा के बेसुरे स्वर के सदृश बताया है। किम्बहुना, पार्वती के केशों के सौन्दर्य के आगे चमरी मृगी के केश उसे तुच्छ प्रतीत हुए हैं। महाकवि कालिदास का मन्तव्य है कि यदि पशु–पक्षियों के हृदय में भी लज्जा का भाव हुआ करता, तो निश्चित ही पार्वती के उस केशपाश को देखकर चमरियों का अपने केशों के प्रति प्रेम शिथिल पड़ जाता।[52]

महाकवि का मन्तव्य है कि मनुष्य की मानसिक दशाओं के सन्दर्भ में मनुष्य का संकल्प उस निम्नगामी जल की ही भाँति दृढ़ होना चाहिए, जिसकी गति को कोई विपरीत नहीं कर सकता– **कः ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।। कुमारसम्भवम्।। 05/05।।** इसी प्रकार संयमी व्यक्ति के मन में वैसे ही **क्रोध** और **क्षमा** दोनों का वास होना चाहिए, जैसे मेघों में **विद्युत्** एवं **जल** दोनों का वास होता है–**अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः।। कुमारसम्भवम्।। 04/43।।**

महाकवि कालिदास का कहना है कि जिस प्रकार सूर्य जहाँ निकलता है, वहाँ प्रकाश कर दिया करता है और जहाँ अस्त होता है, वहाँ अन्धकार कर देता है, ऐसी ही गति तेजस्वी व्यक्तियों की भी होती है–

खं प्रसुप्तमिव संस्थिते रवौ तेजसो महत ईदृशी गतिः।
तत्प्रकाशयति यावदुद्गतं मीलनाय खलु तावतश्च्युतम्।। कुमारसम्भवम्।। 8/43।।

पर्वत की ऊँची चोटियों पर जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैल जाती है और निचली घाटियों में जैसे अन्धकार फैल जाता है, उसी तरह विधाता के द्वारा महान व्यक्तियों के लिए **गुणयोग** एवं नीच व्यक्तियों के लिए **दोषयोग** का विधान किया जाता है–

उन्नतेषु शशिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निशातमः।
न्नमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः।।कुमारसम्भवम्।। 8/66।।

प्रकृति के प्रति अपने इसी प्रकृष्ट प्रेम के माध्यम से महाकवि कालिदास ने प्रकृति के रहस्य को जान लेने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। उन्होंने इस तथ्य को भली–भाँति जान लिया था कि समग्र विश्व एक ही ईश्वर की सृष्टि है और प्रकृति भी स्वतः दिव्यरूप है। उसमें अन्तर्निहित आत्मा से ऐक्य का अनुभव करके, मनुष्य उस ईश्वर तक पहुँच सकता है, प्रकृति जिसकी अव्यक्त सत्ता का व्यक्त स्वरूप है। कालिदास की दृष्टि में प्रकृति एवं मानव के मध्य विराजमान परस्पर सम्बन्ध, विश्व में विराजने वाली भगवद्विभूति की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति है। अतः ईश्वर को चराचर सृष्टि का मूल कारण मानते हुए, देवताओं के माध्यम से महाकवि ब्रह्मा जी से कहता कि तुमने जल के मध्य जिस सार्थक बीज को बोया है, उसी से यह पशु–पक्षी, मनुष्य आदि चर और पर्वत–वृक्षादि अचर जगत् उत्पन्न हुआ है और तुम उनके जनक कहे जाते हो।[53]

इस प्रकार सम्पूर्ण कुमारसम्भवम् महाकाव्य प्रकृतिचित्रण की रमणीयता से ओत–प्रोत प्रकृतिप्रेम का विलक्षण नमूना है, जो महाकवियों के काव्यों में दुर्लभ होने के साथ–साथ महाकवि कालिदास के प्रकृतिप्रेम का निर्देशक तत्त्व है। ज्ञातव्य है कि जो व्यवस्था और शृंखला बलपूर्वक थोपी नहीं जाती, वही मनुष्य को नियन्त्रित करती हुई मुक्ति देती है। ऐसी व्यवस्था और निर्विरोध शृंखला प्रकृति में ही देखी जा सकती है। प्रकृति की अनिर्वचनीय सुषमा से आकर्षित महाकवि कालिदास ने एक ओर प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य में अवगाहन करके, उसके प्रति अपने हृदय के उल्लास को व्यक्त किया है, तो दूसरी ओर प्रकृति के नानाविध क्रिया–कलापों में अपनी अन्तःप्रकृति की प्रतिच्छाया का अनुभव करते हुए, ज्वलन्त रूपकों को अपने काव्यों में चित्रित किया है।

प्रकृति में सर्वदा जागरूक रहने वाली व्यवस्था का तथा संतुलन एवं कालुष्य–विभंजिका शक्ति का अनुशीलन करके, महाकवि ने प्रकृति के जड़ एवं चेतन दोनों रूपों में नितान्त उदात्त एवं महनीय तथ्यों का साक्षात्कार किया है। दिवस और रात्रि के नियमित आवर्तन, एक के उपरान्त दूसरी ऋतु के अवतरण, नित्य नवीन शोभा से उद्भासित धरती और आकाश, उदय एवम् अस्त तथा ह्रास एवं वृद्धि के क्रमिक चक्र में चंक्रमणशील सूर्यचन्द्रादि में महाकवि कालिदास ने उस अनोखी निर्विरोध शृंखलाबद्ध व्यवस्था का दर्शन किया है, जो मनुष्य को मुक्तिमार्ग प्रदान कर सकती है। प्रकृति अपने स्थिर नियमों से मानव के सम्मुख अनेक आदर्श प्रस्तुत करती है; उदाहरणतया, परोपकार की दृष्टि से कालिदास की मान्यता है कि परोपकारी को परोपकार करते समय किसी प्रकार का गर्व नहीं करना चाहिए, अन्यथा परोपकार करने के बाद, उसका बखान करने से उसकी महत्ता कम हो जाती है। इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए महाकवि ने वृक्षों का अवलोकन किया है, जो स्वयं अपने सिर पर धूप झेलकर, शरण में आए हुए प्राणियों को अपनी छाया द्वारा सन्तापमुक्त किया करते हैं। महाकवि कालिदास में प्रकृति के प्रति व्यापक सहानुभूति है। इस सहानुभूति का ही परिणाम है कि महाकवि ने अपनी कृतियों में प्रकृति को भी अन्य मानव पात्रों की भाँति नवीन प्राणवान स्वरूप प्रदान किया है।

सन्दर्भ (REFERENCES)

01. रघुवंषम्।। 04/27–28।।
02. वृद्धतापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुषयाविवास्ताम्।। रघुवंषम्।। 16/45।।
03. वनेषु सांयतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सषब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरष्चकार।। रघुवंषम्।। 16/47।।
04. शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सा लक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाषेन प्रचेयतारका प्रभातकल्पा शषिनेव शर्वरी।। रघुवंषम्।। 03/02।।
05. ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु, निर्धौतहारगुलिकाविषदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे, लीलास्मितं सदषनार्चिरिव त्वदीयम्।। रघुवंषम्।। 05/70।।
06. तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।। रघुवंषम्।। 15/66।।
07. संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
ιζπ¬εσ ιΨψοφκξρκεζκ ιζΗκκ ιραξΛ; εθυσəπ /κσυθ%AA φ?κθοαəκε~AA 02≅1 5AA
08. पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन, प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुः दिनक्षपामध्यगतेव संन्ध्या।। रघुवंषम्।। 02/20।।
09. नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।। रघुवंषम्।। 06/22।।
10. रघुवंषम्।। 04/18।।
11. रघुवंषम्।। 13/54–57।।
12. सेव्यमानौ सुखस्पर्षैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूत – वन – राजिभिः।। रघुवंषम्।। 01/38।।
13. वैदेहि पष्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराषिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाषमाविष्कृतचारुतारम्।। रघुवंषम्।। 13/02।।
14. दूराद्यष्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराषेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा।। रघुवंषम्।। 13/15।।
15. कुरुष्व तावत्करभोरु पष्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः।। रघुवंषम्।। 13/18।।
16. अभिययुः सरसो मधुसंभृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः।। रघुवंषम्।। 09/27।।
17. त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राषिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति।। रघुवंषम्।। 13/15।।
18. सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विष्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्।। रघुवंषम्।। 01/51।।
19. तस्य स्तनप्रणयिभिर्मुहुरेणषावैर्व्याहन्यमानहरिणीगमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुषगर्भमुखं मृगाणां यूथं तदग्रसरगर्वितकृष्णसारम्।। रघुवंषम्।। 09/55।।
20. भुवं कोष्णेन कुण्डोघ्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना।। रघुवंषम्।। 01/84।।
21. मनोज्ञगन्धं सहकारभंगं पुराणषीधुं नवपाटलं च।
संबध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वं निदाघवधिना प्रमृष्टाः।। रघुवंषम्।। 16/52।।
22. पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्धनगर्जितानि।। रघुवंषम्।। 13/28।।
23. उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुखच्छविः।
सदृषमिष्टसमागमनिर्वृत्तिं वनितयानितया रजनीवधूः।। रघुवंषम्।। 09/38।।
24. विसृष्टपार्ष्वानुचरस्य तस्य पार्ष्वद्रुमाः पाषभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकषब्दं वयसां विरावैः।।
मरुत्प्रयुक्ताष्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्तमानम्।
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।। रघुवंषम्।। 02/9–10।।

25. स्मरतेव सषब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम्।
अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमषोकेन सुगात्रिशोच्यसे।। रघुवंषम्।। 08/63।।

26. नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।। रघुवंषम्।। 14/69।।

27. प्रषमस्थित–पूर्वपार्थिवं कुलमभ्युद्यतनूतनेष्वरम्।
नभसा निभृतेन्दुनातुलामुदितार्केण समारुरोह तत्।। रघुवंषम्।। 08/15।।

28. स चानुनीतः प्रणतेन पष्चान् मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रपोगात्छैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य।। रघुवंषम्।। 05/54।।

29. शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मषोभे, सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो, बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति।। रघुवंषम्।। 09/80।।

30. कुमारसम्भवम्।। 08/29।।

31. कुमारसम्भवम्।। 08/31।।

32– कुमारसम्भवम्।। 08/34।।

33– कुमारसम्भवम्।। 08/55।।

34. कुमारसम्भवम्।। 08/61।।

35. अंगुलीभिरेव केषसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शषी।। कुमारसम्भवम्।। 08/63।।

36. अस्त्युत्तरस्यां दिषि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। कुमारसम्भवम्।। 01/01।।

37. कुमारसम्भवम्।। 01/5–9।।

38. कुमारसम्भवम्।। 01/10।।

39. कुमारसम्भवम्।। 09/44।।

40. कुमारसम्भवम्।। 08/25।।

41. कुमारसम्भवम्।। 05/17।।

42. कुमारसम्भवम्।। 03/36।।

43. कुमारसम्भवम्।। 08/73।।

44. कुमारसम्भवम्।। 10/32–34।।

45. कुमारसम्भवम्।। 01/24।।

46. कुमारसम्भवम्।। 01/32।।

47. कुमारसम्भवम्।। 01/33।।

48. कुमारसम्भवम्।। 01/44।।

49. कुमारसम्भवम्।। 05/09।।

50. कुमारसम्भवम्।। 01/41।।

51. कुमारसम्भवम्।। 01/43।।

52. कुमारसम्भवम्।। 01/48।।

53. यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज त्वया।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे।। कुमारसम्भवम्।। 02/05।।